बुद्धवर्ष २५४५, कार्तिक पूर्णिमा, ३० नवंबर, २००१ वर्ष ३१ अंक ६

धम्मवाणी

मनोपकोपो रक्खेय्य, मनसा संवुतो सिया।
मनोदुच्चरितं हित्वा, मनसा सुचरितं चरे॥

--धम्मपद २३३

मानसिक आवेश (उन्माद) से अपने को बचाये, मन से संयत रहे (उसे संयमित रखे)। मानसिक दुराचार को त्याग कर मानसिक सदाचरण करे।

[धारण करे तो धर्म]

मन का कर्म ही प्रधान है

(जी-टीवी पर क्रमशः चौवालीस कड़ियों में प्रसारित पूज्य गुरुदेव के प्रवचनों की अठारहवीं कड़ी)

'सत्कर्म ही सद्धर्म है, दुष्कर्म ही अधर्म है।' उपदेश सुन करके इस सच्चाई को केवल बुद्धि के स्तर पर स्वीकार कर लें या जिसने उपदेश दिया है उसके प्रति अत्यंत श्रद्धा होने के कारण श्रद्धा के स्तर पर स्वीकार कर लें तो बात बनती नहीं। अंतर्मुखी हो करके ,काया में स्थित हो करके ,कायस्थ हो करके भीतर के सारे प्रपंच को अनुभूतियों पर उतारे तो अनुभूतियों से जानने लगेगा कि कर्म का फल कैसे आता है? जैसा कर्म है वैसा ही फल आने वाला है। अनुभूति पर जो सच्चाई उतर गई, अब उसे धारण करना आसान हो गया। अन्यथा केवल बुद्धि-विलास, वाणी-विलास, इसी में सारा जीवन बीत जाता है। अपने भीतर सच्चाई का दर्शन करना है, कुदरत के कानून का दर्शन करना है, विश्व के विधान का दर्शन करना है याने धर्म का दर्शन करना है। वह व्यक्ति सम्यक संबुद्ध बनने के पहले किन्हीं दो आचार्यों के पास जा करके बहुत गहरे-गहरे ध्यान सीखता है। उन दिनों के भारत के सबसे गहरे ध्यान थे -पहले से ले करके सातवां ध्यान और फिर सातवें के बाद आठवां ध्यान। इतनी गहरी समाधि कि बिल्कुल निर्विचार, बिल्कुल निर्विकल्प। जैसे भीतर तालाब के पेंदे में पानी जरा-सा भी हिलता नहीं। इतना शांत, इतना शांत। जब ऐसी अवस्था आती है तो पानी का सारा मैल पेंदे की ओर जाते-जाते पेंदे में इकट्ठा हो जाता है। पानी बड़ा स्वच्छ, बड़ा निर्मल और लगता है जैसे सारे विकार दूर हो गये। लेकिन दूर नहीं हुए, पेंदे में चले गये। उनका दमन हो गया, शमन नहीं हुआ। यही बात जब उस व्यक्ति ने देखी तो कहता है -"नहीं, अभी मैं पूर्णतया मुक्त नहीं हुआ। ये आठों ध्यान समापत्तियां प्राप्त करके भी मैं मुक्त नहीं हुआ। जब तक लेशमात्र भी विकार जड़ों के रूप में मेरे अंतर्मन की गहराइयों में हैं, तब तक मैं मुक्त नहीं हुआ।"

यों खोजते-खोजते यह विद्या खोज निकाली और भीतर सच्चाई को देखते-देखते सारे विश्व का विधान, कुदरत का कानून, निसर्ग का नियम, ऋत, सत्य, धर्म प्रकाशित हो गया, उद्घाटित हो गया। सब कुछ जान गया। कुदरत के सारे रहस्यों को जान गया तब सम्यक संबुद्ध हो गया, मुक्त हो गया। नितांत निर्मल हो गया। फिर धर्म बांटा। पहली बार शुद्ध धर्म बांटा तो केवल उपदेश दे करके नहीं रह गया, यह विद्या सिखायी। जिन पांच ब्राह्मणों को पहले-पहल धर्म की शिक्षा देते हुए धर्मचक्र प्रवर्तन किया, उन पांचों को, केवल सिद्धांतों की बातें नहीं, उसका प्रयोगात्मक पक्ष सिखाया। इस तरह से अपने भीतर सच्चाई देखना सीखो और पांचों के पांचों अनेक जन्मों से पके हुए थे, देखते-देखते शुद्ध हो गये, बुद्ध हो गये। इस विद्या का उपयोग करके भवमुक्त हो गये। कोरे उपदेशों से नहीं होता। उपदेश तो रोज सुनते आये हैं, भारत की बहुत पुरातन परंपरा है -कर्म ही प्रधान है, कर्म ही प्रधान है। जैसा कर्म वैसा फल, जैसा कर्म वैसा फल। अब अंतर्मुखी हो करके जब सारा रहस्य समझेंगे तो जैसे विवरण से समझ लिया, ब्यौरे से समझ लिया, डिटेल से समझ लिया। कुछ अनजाना नहीं रह गया। विपश्यना करनेवाला यही करता है। उसे पूरी तरह समझने में कितना ही समय लगे पर रास्ता वही है। चलते-चलते सारा रहस्य खुल जायगा, कुछ बाकी नहीं रहेगा।

जैसा कर्म वैसा फल। तो कौन-सा कर्म? कर्म तो तीन प्रकार के होते हैं। एक कायिक कर्म, काया से किया हुआ कर्म। एक वाचिक कर्म, वाणी से किया हुआ कर्म। और एक चैतसिक कर्म, मन से किया हुआ कर्म। तो कौन-सा कर्म? जन साधारण में एक यह गलत मान्यता चलती है कि भाई, जो शरीर का कर्म है वही प्रमुख है। वाणी का कर्म उससे जरा हल्का है। और मन का क्या कर्म? मन में कोई बात आयी, आयी। निकल गयी, निकल गयी। वह भी कोई कर्म हुआ। कर्म तो शरीर का ही प्रमुख है। अंतर्मुखी हो करके सच्चाई को देखता है तो समझ में आता है -अरे, नहीं, नहीं; मन का कर्म ही प्रमुख है, वाणी का नहीं, शरीर का नहीं। मन का कर्म ही 'बीज' है जो फल देता है। वाणी का कर्म बीज नहीं है। शरीर का कर्म बीज नहीं है। बीज मन का कर्म है। आखिर क्या है वाणी का कर्म? आखिर क्या है शरीर का कर्म? मन के कर्म का ही बाह्य प्रकटीकरण है। हर कर्म पहले मन में होगा। मन में होगा और तेज होते-होते बाहर प्रकट होगा तो वाणी के कर्म के रूप में प्रकट होगा। और तेज होते-होते शरीर पर प्रकट होगा, शारीरिक कर्म के रूप में प्रकट होगा। जड़ें तो मन में हैं ना! तो कर्म मन में आरंभ हुआ। हर वाणी का कर्म, हर शरीर का कर्म मन के कर्म की ही संतान है। तो मन का कर्म ही प्रमुख है।

एक उदाहरण से समझें -किसी व्यक्ति के साथ मानो मेरे संबंध

बिगड़े हुए हों। उसे देखते ही मन ने काम करना शुरू किया। बड़ा क्रोध जागा, बड़ा द्वेष जागा, बड़ी दुर्भावना जागी। तेज होती गयी, होती गयी। नहीं रहा गया तो वाणी पर उतर आयी। उसे दो-चार गालियां निकाल दी। उसका अपमान कर दिया। वाणी का दुष्कर्म हो गया। वह मन का कर्म और तेज हुआ, और तेज हुआ, शरीर पर उतर आया, उसे दो चांटे लगा दिये। पास में कोई पिस्तौल पड़ी थी तो धांय से मार दिया। उसकी हत्या कर दी। शरीर का दुष्कर्म हो गया। अरे, यह वाणी का दुष्कर्म, यह शरीर का दुष्कर्म है क्या? मन के दुष्कर्म का ही तो बाह्य प्रकटीकरण है। मन के दुष्कर्म की ही तो संतान है। जड़ें तो मन में है।

जैसे दुष्कर्म, ठीक वैसे ही सत्कर्म। किसी बहुत दुखियारे को देख करके मन ने काम करना शुरू किया। बड़ी दया जागी, बड़ी करुणा जागी। तेज हुई, तेज हुई, वाणी पर प्रकट हो गयी। उसे दो-चार सांत्वना के शब्द कह दिये, प्यार के शब्द कह दिये। वाणी का सत्कर्म हो गया। यह मन का सत्कर्म और तेज हुआ, और तेज हुआ तो शरीर पर उतर गया। जैसे बन पड़ी, उसकी सहायता कर दी। अपने पास कुछ था, उसे दे दिया। शरीर का सत्कर्म हो गया। क्या है यह वाणी का सत्कर्म? क्या है यह शरीर का सत्कर्म? मन के सत्कर्म की ही संतान है। तो प्रमुख तो मन का कर्म ही है। चाहे सत्कर्म हो चाहे दुष्कर्म हो, हमें जो पहरा लगाना है वह मन के कर्मों पर लगाना है। जो आदमी अपने मन के कर्मों के प्रति सजग हो गया, वाणी से दुष्कर्म कैसे करेगा? शरीर से दुष्कर्म कैसे करेगा? मन से दुष्कर्म होने ही नहीं देगा। सजग है, नहीं होने देगा। और विपश्यना करते-करते, जड़ों से विकार निकालते-निकालते, मन निर्मल हो जाय तो कहना ही क्या! सत्कर्म ही सत्कर्म होगा। क्योंकि मन निर्मल है ना! तो हर कर्म मन का अच्छा ही होगा, निर्मल ही होगा। कुदरत जो हमें दंड देती है या जो फल देती है, वह हमारे मन के कर्मों का ही देती है, वाणी के कर्मों का नहीं, शरीर के कर्मों का नहीं। वह मन के कर्म को देखती है। चित्त की चेतना कैसी है? चित्त की जैसी चेतना है, ठीक उसी प्रकार फल आयेगा।

एक और उदाहरण से समझें। एक बहुत धनी व्यक्ति, बहुत-सा धन लेकर किसी जंगल में-से अकेले यात्रा कर रहा है। सामने से कोई डाकू आ गया और उसने पहचान लिया, इस आदमी के पास धन-दौलत है, माया है। उसका लोभ जागा। मांगता है, मेरे हवाले कर। उसको अपने धन से आसक्ति है। कैसे देगा? नहीं देता। उस डाकू को क्रोध आया। बहुत क्रोध आया। उसने चाकू निकाला और उसके पेट में भोंक दिया। वह व्यक्ति मर गया। एक घटना घटी।

एक दूसरी घटना – एक आदमी बहुत रोगी है। पेट में असह्य वेदना है। हर तरह के उपचार करके हार गया। कोई लाभ होता नहीं। डाक्टर कहता है तेरे पेट में कोई फोड़ा है। तुम कहो तो उसे आपरेशन करके निकाल दें। कौन जाने ठीक हो जाओ। अरे, कीजिए डाक्टर साहब, किसी तरह मुझे बचाइये। यह पेट का दर्द मुझसे सहा नहीं जाता। अच्छी बात। उसे आपरेशन थियेटर में ले गये। आपरेशन टेबल पर लेटाया। डाक्टर ने अपना चाकू निकाला, उसके पेट में भोंका और संयोग ऐसा हुआ कि उस वक्त वह व्यक्ति मर गया।

उस डाकू ने और इस डाक्टर ने, दोनों ने अपने शरीर से एक ही प्रकार का काम किया। अपना-अपना चाकू निकाला, किसी व्यक्ति के पेट में भोंका और परिणामस्वरूप वह व्यक्ति मर गया। तो क्या यह प्रकृति, क्या यह निसर्ग, क्या यह कुदरत अथवा यों कहें, क्या यह परमात्मा, क्या यह अल्लाह-ताला दोनों को एक ही दंड देगा? अरे, कभी नहीं। चित्त की चेतना कैसी है? उस डाकू के चित्त की चेतना क्रोध से भरी हुई, द्वेष से भरी हुई, दुर्भावना से भरी हुई। इस डाक्टर के चित्त की चेतना स्नेह से भरी हुई, सद्भावना से भरी हुई, सेवा से भरी हुई। जैसी चित्त की चेतना, फल बिल्कुल वैसा ही आएगा। वाणी के कर्म के अनुसार नहीं, शरीर के कर्म के अनुसार नहीं। बिल्कुल नहीं। चित्त की चेतना कैसी है?

ऐसे ही एक और उदाहरण वाणी के कर्म का देखें। किसी व्यक्ति के साथ मेरे '३६' के-से संबंध हैं, उससे बनती नहीं और वह सामने आया। उसे देख कर क्रोध जागा। खूब क्रोध जागा, खूब द्वेष जागा, खूब दुर्भावना जागी और गालियां निकाल दी उसे – 'सूअर, पाजी, गधा।' एक घटना घटी। कुछ समय के बाद मेरा ही अपना पौत्र कहीं-से धूल-मिट्टी में खेल कर आया, कीचड़ में खेल कर आया। सारे कपड़े खराब करके आया। उसे देख कर कहता हूं – 'अरे, सूअर, पाजी, गधा।' शब्द वही के वही इस्तेमाल हुए। पहली बार सूअर, पाजी, गधा कहा तो चित्त की चेतना क्या? द्वेष से भरी हुई, दुर्भावना से भरी हुई और दूसरी बार इन्हीं शब्दों का प्रयोग किया तो स्नेह से भरी हुई, वा से भरी हुई, सद्भावना से भरी हुई। कुदरत चित्त की चेतना को ही देखती है।

चित्त की जैसी चेतना, फल वैसा ही आय।
दुर्मन का फल दुखद ही, सुखद सुमन का पाय॥

चित्त की चेतना कैसी है? कुदरत के सारे रहस्य को समझ करके, प्रकृति के सारे नियमों को समझ करके, धर्म को समझ करके उस व्यक्ति ने यह घोषणा की, जो सम्यक संबुद्ध बन गया – **चेतनाहं कम्मं वदामि, भिक्खवे!** – चित्त की चेतना को ही मैं कर्म कहता हूं। और हर विपश्यी साधक अंतर्मुखी हो करके इस सच्चाई को देखने लगेगा। चित्त की चेतना ही तो कर्म है। जैसी चित्त की चेतना है वैसा बीज बो रहा हूं। बीज बोते वक्त जैसी अनुभूति हो रही है! इसका फल भी इसी प्रकार आने वाला है। खूब समझ में आने लगेगा। खूब समझ में आने लगेगा। चित्त की चेतना प्रमुख है तो उसी के प्रति सजग रहें। वाणी के कर्म, शरीर के कर्म, इन पर पहरा रखें, कोई बुरी बात नहीं। पर मुख्यतः तो हम मन के कर्मों पर पहरा रखें। मन ही प्रमुख है। मन की प्रधान है। बड़े स्पष्ट शब्दों में इस सर्वज्ञ महापुरुष ने घोषणा की –

मनोपुब्बङ्गमा धम्मा, मनोसेट्ठा मनोमया।

'मनोपुब्बङ्गमा धम्मा' – जो भी धर्म, कर्म जागते हैं, उनके पहले मन जागता है। कोई भी कर्म करो, पहले मन जागेगा। तो इसलिए **'मनोसेट्ठा, मनोसेट्ठा',** मन ही श्रेष्ठ है, मन ही प्रमुख है, मन ही प्रधान है। जो कुछ हम संसार में देख रहे हैं, भोग रहे हैं, सुख या दुःख, वह सारा का सारा मनोमय, मनोमय, मन का ही परिणाम है। ये अनुभूति के वाक्य हैं। किसी की भी अनुभूति पर उतर जायेंगे। अंतर्मुखी हो करके, काया में स्थित हो करके कायस्थ बने और सच्चाई का दर्शन करना शुरू करे। सारा रहस्य खुलने लगेगा, अपने आप खुलने लगेगा। तो कहते हैं –

मनसा च पदुट्ठेन भासति वा करोति वा।

–प्रदुष्ट चित्त से, मैले चित्त से अगर कोई काम वाणी का करते हैं या शरीर का करते हैं, क्योंकि आधार गलत है, चित्त मैला है, प्रदुष्ट है तो –

ततो नं दुक्खमन्वेति चक्कं व वहतो पदं।

मैले चित्त का काम किया है ना! तो उसके पीछे दुःख ऐसे लग जाता है जैसे बैलगाड़ी पर जुते हुए बैल के पीछे उस बैलगाड़ी का चक्का लग गया। जहां भागे, बैलगाड़ी पर जुता है ना! जहां भागे,

बैलगाड़ी का चक्का पीछे है, बैलगाड़ी का चक्का पीछे है। मैले मन से दुष्कर्म करे तो दुःख पीछे लग गया। कहीं भाग कर जाय, इस देश में जाय कि उस देश में जाय, इस लोक में जाय कि उस लोक में जाय, पीछे लग गया। दुःख पीछे लग गया। ठीक इसी प्रकार –

मनसा च पसन्नेन भासति वा करोति वा।

–प्रसन्न चित्त से, (पुरातन भाषा है, उन दिनों प्रसन्न का अर्थ होता था –निर्मल, शुद्ध।) निर्मल चित्त से कोई वाणी का कर्म करता है या शरीर का कर्म करता है तो –

ततो नं सुखमन्वेति छाया व अनपायिनी।

–उसके पीछे सुख ऐसे लग जाता है जैसे कभी साथ न छोड़ने वाली हमारी छाया हमारे साथ है। जहां जाएं, छाया साथ है, जहां जाएं, छाया साथ है। आधार अच्छा है ना! चित्त निर्मल है ना! निर्मल चित्त से जो काम किया, उसका फल तो सुखद आने ही वाला है। अब भी आता है, आगे भी आता है।

इध नन्दति पेच्च नन्दति, कत पुञ्ञो उभयत्थ नन्दति।

–यहां भी आनन्दित होता है, बड़ा सुखी होता है और आगे भी उसके लिए आनंद ही आनंद, सुख ही सुख।

इध तप्पति पेच्च तप्पति, पापकारी उभयत्थ तप्पति।

–मन को मैला करे, इसी को पापकर्म कहते हैं। तो जो पापकर्म करने वाला है वह यहां भी संतापित होता है और आगे जाकर भी संतापित होता है। उसके लिए संतापन ही संतापन, दुःख ही दुःख।

अंध-विश्वास से मानने की बात नहीं, अपनी अनुभूतियों से जानने की बात है। कैसे दुःख हमारे पीछे लग गया? कैसे लग गया? बहुत गहराइयों में जाएंगे तो देखेंगे कि चित्त का कर्म आरंभ कैसे होता है? उन दिनों की भाषा का एक शब्द था जो आज के भारत की भाषाओं में-से खो गया। उसे कहते थे –'नति'। नति माने झुकाव। हमारे अंतर्मन का झुकाव किस तरफ हुआ? कोई घटना घटी और शरीर पर एक प्रकार की संवेदना होने लगी –सुखद या दुखद। तो यह चित्त का झुकाव हुआ, नति हुई। किस तरफ हुई? अगर गलत तरीके से हुई तो अवनति हुई। ठीक तरह से हुई तो उन्नति हुई। गलत तरह से हुई तो दुर्गति हुई। ठीक तरह से हुई तो सद्गति हुई। जैसी नति वैसी गति। झुकाव किस तरफ हुआ? अब इस ओर हमने झुकाव कर लिया, बार-बार वैसा ही झुकाव, वैसा ही झुकाव। एक स्वभाव बनता जा रहा है। एक बिहेवियर पैटर्न बन रहा है, मानस का हैबिट-पैटर्न बन रहा है। अप्रिय घटना घटी और क्रोध किया तो नति अवनति वाली है, दुर्गति वाली है। फिर कोई अप्रिय घटना घटी, फिर क्रोध किया, नति अवनति वाली है, दुर्गति वाली है। यों करते-करते उसका स्वभाव हो गया। जीवन में बार-बार अनचाही बातें होती जायेंगी और बार-बार यह नति जागेगी, अवनति की ओर जागेगी, क्रोध जगायेगी, द्वेष जगायेगी, दुर्भावना जगायेगी। और जब-जब यह नति अवनति वाली बनती है माने जब-जब दुष्कर्म कराती है, क्रोध जगाती है, द्वेष जगाती है, दुर्भावना जगाती है तो साधना करने वाला साधक भीतर देखेगा कि कोध जगाते ही उस क्रोध का पहला शिकार तो मैं हुआ। क्रोध जागते ही इतना संतापित हो गया, इतना संतापित हो गया। भीतर देखना नहीं आता ना! कठिनाई यही हो गयी देश की। यह कल्याणकारी विद्या खो जाने की वजह से हम भूल गये कि धर्म किसको कहते हैं? कैसे उसे धारण किया जाय? कैसे उसको जाना जाय भीतर से? क्रोध आता है तो जिस व्यक्ति पर, जिस वस्तु पर, जिस घटना पर क्रोध आया, मन में बार-बार वही, बार-बार वही घूमता है –उसने ऐसा कह दिया, उसने ऐसा कर दिया। तो क्रोध प्रज्वलित होते जाता है, प्रज्वलित होते जाता है। अपने भीतर क्या होने लगा, देखना ही भूल गये। देखना जानते ही नहीं। जाने भी कैसे? विद्या खो गयी। अब इसे देखेंगे। तो देखा क्रोध जागा, अरे, उसके साथ-साथ बड़ी गर्मी जागी, बड़ा संताप जागा। यही तो विष का बीज है। यही दुःख का बीज है और बार-बार, बार-बार उसे स्वभाव बनाते चले जाएंगे तो दुःख ही दुःख, दुःख ही दुःख, दुःख ही दुःख। पीछे लग गया ना! गाड़ी का चक्का पीछे लग गया। क्योंकि बैल उस गाड़ी से जुता हुआ है। हमारा मानस इस स्वभाव से जुता हुआ है। बार-बार, बार-बार दुष्कर्म करता है, बार-बार क्रोध जगाता है और बार-बार, बार-बार दुःख होता है, दुःख होता है। जिसका बीज इतना दुःखदायी है उसका फल उतना ही दुःखदायी आने वाला है।

ठीक इसी प्रकार मन निर्मल हो, प्यार से भर जाय, मैत्री से भर जाय, करुणा से भर जाय, तो सद्गति वाली नति है। भीतर इतनी शांति मालूम होगी। अरे, बीज डालते ही शांति मालूम होने लगी, सुख मालूम होने लगा और वह स्वभाव बनता जा रहा है। जब-जब देखो सद्भावना जगाते हैं, भीतर सुख मालूम होता है, सद्भावना जगाते हैं, सुख मालूम होता है। छाया की तरह सुख हमारे पीछे लग गया। कुदरत का कानून है, विश्व का विधान है। जितनी जल्दी आदमी अनुभवों के स्तर पर समझ जाय, अपना जीवन इस प्रकार ढालना शुरू कर दे, अरे, सद्धर्म के रास्ते चलने लगा। हिंदू धर्म नहीं, बौद्ध धर्म नहीं, जैन धर्म नहीं, ईसाई धर्म नहीं, 'धर्म' के रास्ते चलने लगा। सद्धर्म के रास्ते चलने लगा। जो सत्य है उसके सहारे-सहारे चलने लगा। मंगल ही मंगल होता है, कल्याण ही कल्याण होता है। सद्धर्म के रास्ते जो भी चले, उसका मंगल ही मंगल। उसका कल्याण ही कल्याण। उसकी स्वस्ति ही स्वस्ति। उसकी मुक्ति ही मुक्ति।

नया विपश्यना केंद्र "धम्मपट्ठान"

(पुराने साधकों के लिये कम्मासपुर (हरियाणा) गांव में विपश्यना ध्यान केन्द्र)

संसार में बहुत से विपश्यना ध्यान केन्द्र हैं। धम्मगिरि इगतपुरी में दीर्घ शिविरों का आयोजन करने के लिये 'धम्मतपोवन' के बन जाने से यह आवश्यकता महसूस की गयी कि इस तरह के और भी केंद्र बनें जहां एकान्तिक रूप से दीर्घ शिविरों का ही आयोजन हो।

इसी श्रेष्ठ धर्म चेतना से श्री सत्यनारायण गोयन्काजी ने सोनीपत जिले के कम्मासपुर गांव में, जो दिल्ली से ५० कि.मी. की दूरी पर जी. टी. रोड के बगल में स्थित है, दीर्घ शिविर आयोजन करने के लिए 'धम्मपट्ठान' की परिकल्पना की।

यह क्षेत्र इसलिये भी महत्वपूर्ण है कि भगवान बुद्ध ने यहीं 'महासतिपट्ठान सुत्त' का उपदेश दिया था जिसमें विपश्यना के बारे में विस्तार से कहा गया है। इसीलिए इसका नामकरण 'धम्मपट्ठान' किया गया। यहां पुराने साधक एकान्तिक रूप से महासतिपट्ठान तथा दीर्घ शिविर कर सकेंगे।

'महासतिपट्ठान सुत्त' के अतिरिक्त इस स्थान पर और भी अनेक सुत्तों का उपदेश दिया गया था। प्राचीन ग्रंथों के अनुसार बुद्ध कुछ दिनों तक इस गांव के निकट ही रुके थे। अतः 'धम्मपट्ठान' के अस्तित्व में आने से ऐतिहासिक महत्व का यह तीर्थ-स्थान आने वाले समय में दुनिया भर के लोगों को आकर्षित करेगा।

विपश्यना साधना संस्थान की प्रबंध समिति ने यहां धम्मपट्ठान केन्द्र की स्थापना करने के लिए एक बना-बनाया मकान लिया है जिसमें एक छोटा-सा ध्यान कक्ष और साधकों के रहने की जगह है। इसके चारों ओर चहारदीवारी बनी है।

भविष्य में 'धम्मपट्ठान' पर दो ध्यान कक्ष होंगे, एक पगोडा, मुख्य आचार्य-निवास, पुरुष तथा महिला सहायक आचार्यों के लिये स्वतंत्र निवासस्थान तथा पुरुष और महिला साधकों के लिये निवास सहित सभी आवश्यक सुविधाएं उपलब्ध होंगी। केन्द्र पर १०-दिवसीय (विशेष), सतिपट्ठान तथा २०, ३०, ४५, ६० और ९० दिवसीय शिविर होंगे जहां पुराने और गंभीर साधक ध्यान कर सकेंगे।

नए उत्तरदायित्वः

आचार्य

Ven. Bhikkhu Shing Shr, Taiwan

वरिष्ठ सहायक आचार्य

१. श्री लक्ष्मीनारायण खेमका, सूरत
२. श्रीमती सुधा त्यागी, चंदीगढ़
3. Dr. Maung Maung, UK
4. Klaus & Edith Nothnagel, Austria8
5. Steve Rann, UK
6. Dr. Gerhard Scholz, Swiss
7. Mien Tan, UK
8. Mona Mylne, Itly

नव नियुक्तियांः

सहायक आचार्य

१. श्री हरिप्रसाद गुप्ता, कोटा
२. श्री सत्यनारायण शर्मा, रतलाम
३. श्रीमती उर्मिलादेवी ऐरन, अजमेर
४. सुश्री गीता माहेश्वरी, जयपुर
५. श्रीमती रेणु खन्ना, जयपुर
६. श्री सीताराम शर्मा, जयपुर
७. श्री सुधीर पई, इगतपुरी
८. सुश्री शांतुबेन पटेल, भुज
९. श्री शंकर दोराईस्वामी, गोवा
१०. श्रीमती कृष्णा आर. कुरुप, चेन्नई
11. Miss Maria Pilar de Castro Pinuela, Spain

बाल-शिविर शिक्षक

१. श्री अभय शाह, बारामती (पुणे)
२. श्रीमती विनोद चड्ढा, पुणे
३. श्री दीक्षार्थ अहिरे, मनमाड
४. श्रीमती विद्या दी. अहिरे, "
५. श्री उत्तम गांगुर्डे, मनमाड
६. डॉ. संगम जोधाळे, नांदेड
७. श्री अशोक डी. पटेल, धुळे
८. श्रीमती रेखा कोलपे, धुळे
९. श्रीमती गीता माहेश्वरी, जयपुर
१०. कु. अपुर्वा याज्ञिक, जयपुर
११. श्री जगदीशलाल गुप्ता, टोंक
१२. श्री मदनमोहन गौतम, मथुरा
१३. श्री अनिलकुमार मौर्य, भदोही
१४. कु. गीता सिंह, लखनऊ
१५. श्री विजय जेठानी, इंदौर
१६. श्रीमती लक्ष्मी जेठानी, "
१७. श्री प्रह्लाद चौधरी, इंदौर
१८. श्रीमती संगीता चौधरी, "
१९. श्री अवधूत गोखले, "
२०. श्री ए. सुब्रमणियम, कल्पक्कम
२१. श्री के. सुब्रमणियम, कोयमबतूर
२२. कु. कश्मीरा सोनी, मांडवी
२३. श्री प्रदीपकुमार वज, मांडवी
२४. श्री आनंद कुलकर्णी, इगतपुरी
२५. डॉ. सूर्यचंद्र राव, इगतपुरी
२६. श्री सुदेश लील, इगतपुरी

क्रमशः ...

दोहे धर्म के

मन बंधन का मूल है, मन ही मुक्ति उपाय।
विकृत मन जकड़ा रहे, निर्विकार खुल जाय॥

मन के भीतर ही छिपी, स्वर्ग सुखों की खान।
मन के भीतर धधकती, ज्वाला नरक समान॥

कुदरत का कानून है, सब पर लागू होय।
मैला मन व्याकुल रहे, निर्मल सुखिया होय॥

अपने मन का मैल ही, अपना नाश कराय।
ज्यूं लोहे का जंग ही, लोहे को खा जाय॥

मन के कर्म सुधार ले, मन ही प्रमुख प्रधान।
कायिक वाचिक कर्म तो, मन की ही संतान॥

कुदरत लेवे पक्ष ना, करे न कभी लिहाज।
उसको वैसा फल मिले, जिसका जैसा काज॥

मेसर्स मोतीलाल बनारसीदास
• महालक्ष्मी मंदिर लेन, ८ महालक्ष्मी चैंबर्स, २२ वार्डन रोड, मुंबई-४०००२६.
-४९२३५२६, • सनस प्लाजा, शॉप ११-१३, १३०२, सुभाष नगर, पुणे-४११००२.
-४८६१९०, • दिल्ली- २९११९८५,• पटना- ६७१४४२, • वाराणसी- ३५२३३१,
• बैंगलोर- २२१५३८९,• चेन्नई- ४९८२३१५, • कलकत्ता-२४३४८७४
की मंगल कामनाओंसहित

दूहा धरम रा

मन ही दुरजन, मन सुजन, मन बैरी मन मीत।
मन सुधर्‌यां सै सुधरसी, कर मन परम पुनीत॥

चित स्यूं चित रो दमन कर, सहज सरल कर लेव।
चित स्यूं चित नै माज कर, सुद्ध स्वच्छ कर लेव॥

पाप मनां ही नीपजै, मन ही धरम समाय।
मन सुधर्‌यां ही मुक्ति है, बिगड्यां बँधतो जाय॥

मन बंधन रो हेतु है, मन ही मुक्ति उपाय।
मन बिगड्यां बंधन बँधै, सुधर्‌यां खुलतो जाय॥

दोरै मन स्यूं बोलणो, दोरै मन ब्योहार।
दुख लागै ज्यूं बळद रै, गाडी चक्को लार॥

सोरै मन स्यूं बोलणो, सोरै मन रो काज।
लारै लागै छांह ज्यूं, सुख संपद रा साज॥

मेसर्स गो गो गारमेंट्स
३१ -४२, भांगवाड़ी शॉपिंग आर्केड,
१ला माला, कालबादेवी रोड, मुंबई - ४००००२.
०२२- २०५०४१४
की मंगल कामनाओं सहित

'विपश्यना विशोधन विन्यास' के लिए प्रकाशक, मुद्रक एवं संपादकः राम प्रताप यादव, धम्मगिरि, इगतपुरी-४२२४०३, दूरभाष : (०२५५३) ४४०८६, ४४०७६.
मुद्रण स्थान : अक्षर चित्र प्रिंटिंग प्रेस, ६९- बी रोड, सातपुर, नाशिक-४२२००७. **बुद्धवर्ष २५४५,** **कार्तिक पूर्णि**मा, ३० नवंबर, २००१

वार्षिक शुल्क रु. २०/-, विदेश में US $ 10, **आजीवन शुल्क** रु. २५०/-, " US $ 100. **'विपश्यना' रजि. नं. १९१५६**/७१. Regn. No. AR/NSK-46/2001,

Licenced to post **without Prepayment of postage** -- Licence number-- **AR/NSK-WP/3**
Posting day- **Purnima of Every Month,** Posted at **Igatpuri-422403,** Dist. Nashik (M.S.)

If not delivered please return to:-
विपश्यना विशोधन विन्यास
धम्मगिरि, इगतपुरी - ४२२४०३
जिला-नाशिक, महाराष्ट्र, भारत
दूरभाष : (०२५५३) ४४०७६
फैक्स : (०२५५३) ४४१७६
Website: www.vri.dhamma.org
e-mail: <yadavdg@sancharnet.in>